निबन्ध संग्रह 2

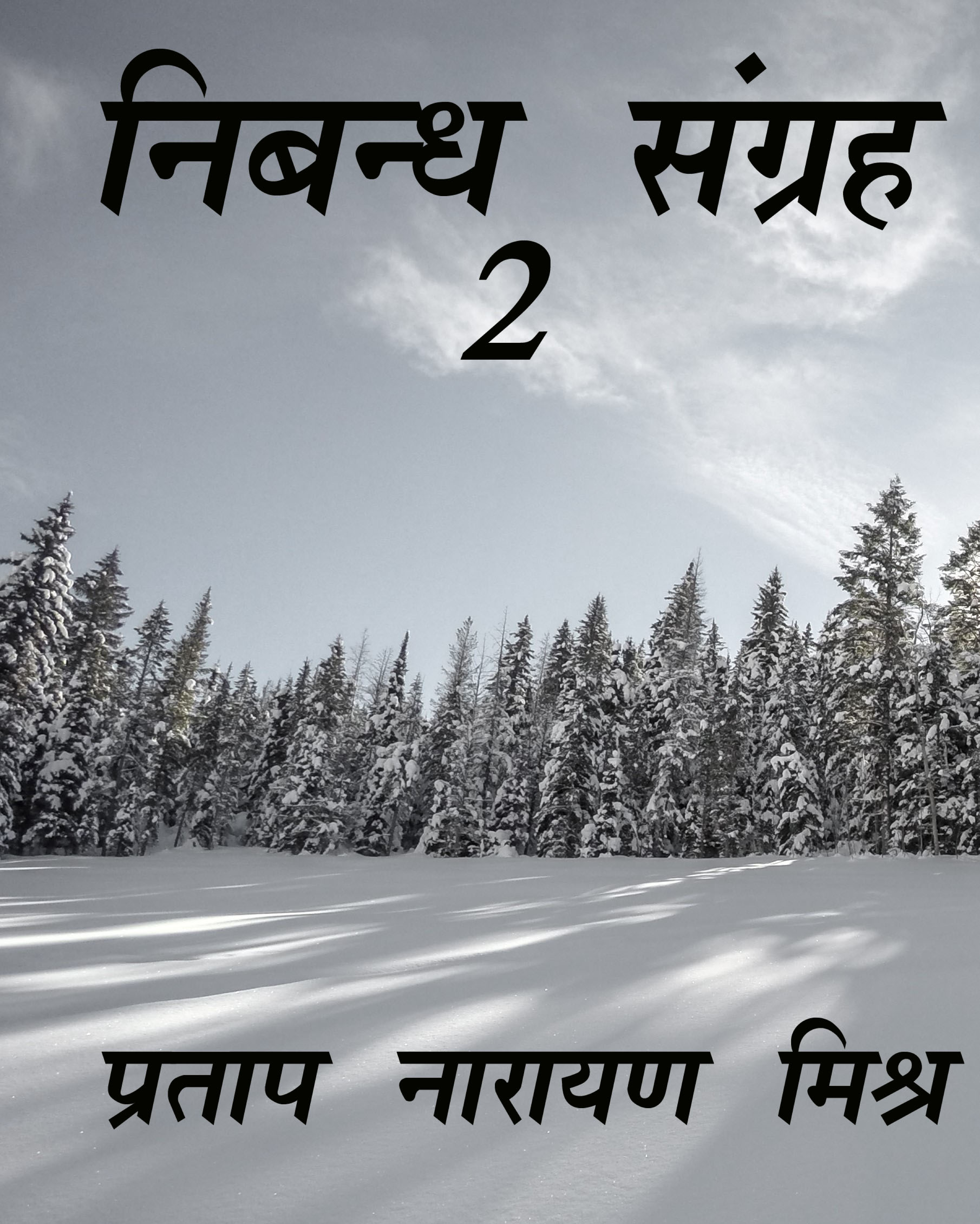

प्रताप नारायण मिश्र

निबंध-2

प्रतापनारायण मिश्र

पढ़ना ही ज़िंदगी है

भूमिका

क्या लिखैं	3
गुप्त ठग	6
छल (1)	10
छल (2)	15
छै! छै!! छै!!!	21
जुवा	27
तत्व के तत्व में अँगरेजीबाजों की भूल है	30
देशी कपड़ा	33
धोखा	35
बाल्यविवाह विषयक एक चोज	40

क्या लिखैं

यदि हम यह प्रश्न किसी दूसरे से करैं तो छुटते ही यह उत्तर मिलेगा कि तुम्हे हिंदुस्तान और इंग्लिस्तान के सहृदय लोग सुलेखक समझते हैं, फिर इसका क्या पूछना, जो चाहो लिख मारो, पढ़ने वाले प्रसन्न ही होंगे। किंतु यह उत्तर ठीक नहीं है क्योंकि लिखने का मुख्य प्रयोजन यह होता है कि जिस उद्देश्य से लिखा जाय उसकी कुछ सिद्धि देखने में आवै। सो उसके स्थान पर यहाँ जिनसे सिद्धि की आशा की जाती है उनके दर्शन ही दुर्लभ हैं। जहाँ श्री हरिश्चंद्र सरीखे सुकवि और सुलेखक शिरोमणि के लिखने की यह कदर है कि बीस कोटि हिंदुओं में से सौ पचास भी ऐसे न मिले कि हरिश्चंद्र कला का उचित मूल्य देकर पढ़ तो लिया करते, करना धरना गया भाड़ में फिर भला वहाँ हम क्या आशा कर सकते हैं कि हमारा लिखना कभी सफल होगा। जहाँ सफलता के आश्रयदाताओं ही का अकाल नहीं तो महा महँगी अवश्य है वहाँ सफलता की आशा कैसी? हाँ, यदि इसको सफलता मान लीजिए तो बात न्यारी है कि राजनैतिक विषयों को छेड़ छाड़ करके राजपुरुषों की आँख में खटकते रहना, सामाजिक विषयों की चर्चा करके पुराने ढंग वाले बुड्ढों की गालियाँ सहना, सुचाल का नाम ले के मनमौजियों का बैरी बनना, और धर्म की कथा कह के नए मतवालों के साथ रंड़हाव पुतहाव मोल लेना, प्राचीन रीति नीति की उत्तमता दिखला के बिलायती दिमाग वालों में ओल्डफूल कहलाना इत्यादि, यदि यही सफलता है तो निष्फलता और दुष्फलता किसे कहते हैं? इसी से पूछना पड़ता है कि क्या लिखैं? आप कहिएगा, सब झगड़े छोड़ कर अपने प्रेम-सिद्धांत ही के गीत क्यों नहीं गाते। पर उसके समझने वाले हम कहाँ से लावैं, परमेश्वर के दर्शन भी दुर्लभ हैं, रहे संसारिक प्रेमपात्र, उनका यह हाल कि शिर काट के सामने रख दीजिए और उस पर चरण स्पर्श के लिए निवेदन कीजिए तो भी साफ इनकार अथवा बनावटी ही इकरार होगा। फिर क्या प्रेम सिद्धांत साधारण लोगों के सामने प्रकाश करने योग्य है जिनमें "बोद्धारोमत्सरग्रस्ताः प्रभवस्मयदूषिताः अबोधोपहताश्चान्ये" का प्रत्यक्ष प्रमाण विद्यमान है। हे प्रेमदेव! तुम हमारे श्मशान समान सुनसान मनोमंदिर में

विराजमान होकर संसार को अपनी महिमा क्या दिखा सकते हो? हम तुम्हे कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुसमर्थ मानते हैं पर जब देखते हैं कि हमारा अपवित्र मुख तुम्हारा नाम लेने योग्य भी नहीं है, यदि बेहयाई से तुम्हारी चर्चा भी करें तो फल यह देखते हैं कि मुख से प्रेम का शब्द निकलते ही देर होती है किंतु पागल निकम्मा बेशर्म बेधर्म इत्यादि की पदवी प्राप्त होते विलंब नहीं लगता। भला ऐसी दशा में प्रेम का यश गाना अपनी निंदा कराना और दूसरों का पाषाण हृदयत्व के लिए उत्तेजित करना ही है कि और कुछ? यदि यह भी अंगीकार कर लें तो उस लोकातीत अनिर्वचनीय के विषय में लिखें ही क्या? फिर बताइए कि हम क्या लिखें? ब्रहाज्ञान छौंके तो आशा है कि पाठकगण स्वयं ब्रह्म बन-बन कर कर्तव्याकर्तव्य की चिंता से मुक्त हो जाएँगे। किंतु साथ ही गृह कुटुंबादि की ममता से भी वंचित हो बैठेंगे जो अपने और पराए सुख का मूल है। यह न हुवा तो मनुष्य में और पाषाण खंड में भेद ही क्या? फिर भला चलते-फिरते कर्त्तव्यपालन समर्थ प्राणी को अकर्ता उपभोक्ता बना बैठने का पाप किसको होगा? यदि "स्वार्थे समुद्धरेत्प्राज्ञ:" का मंत्र लेकर केवल हुजूरों की हाँ में हाँ मिलाया करें अथवा रुपए वालों को बात-बात में धर्ममूर्ति धर्मावतार बनाया करें व भोलेभाले भलेमानसों को गीदड़-भभकी दिखाया करें तो धन और खिताबों की कमी न रहेगी, किंतु हृदय नर्कमय हो जाएगा, उसे क्यों कर धैर्य प्रदान करेंगे? ऐसी-ऐसी अनेक बातें हैं जिन पर लेखनी को कष्ट देने से न अपना काम निकलता दिखाई देता है न पराया, इसी से जब सोचते हैं तब चित्त यही कहने लगता है कि क्या लिखैं? यों कलम ले के लिखने बैठ जाते हैं तो विषय आजकल के नौकरी के उम्मीदवारों की तरह एक के ठौर अनेक हाजिर हो जाते हैं। पर जब उनकी विवेचना करते हैं तो यही कहना पड़ता है कि जिन बातों को बीसियों बार बीसियों प्रकार, हम ऐसे बीसियों लिक्खाड़, लिख चुके हैं उन्हें बार-बार क्या लिखें? यदि मित्रों से पूछते हैं कि क्या लिखें तो जै मुँह तै बातैं सुनने में आती हैं। सब के सब अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग ले बैठते हैं जिनमें यह संभावना तो दूर रही कि दूसरों को रुचि होगी, कभी-कभी लिखने वाले ही का जी नहीं भरता। फिर क्या लिखैं? लोग कहते हैं कि लिखा पढ़ी बनाए रखने से देश और जाति का सुधार होता है। पर हम

समझते हैं यह भ्रम है। जिस देश और जाति को बड़े-बड़े ऋषियों मुनियों कवियों के बड़े-बड़े ग्रंथ नहीं सुधार सकते उसे हम क्या सुधारेंगे? जो लोग स्वयं सुधरे हैं उन्हें हमारे लिखने की आवश्यकता क्या है और जिन्हें सुधरने बिगड़ने का ज्ञान ही नहीं है उनके लिए लिखना न लिखना बराबर है, फिर क्या लिखैं? और न लिखैं तो हाथों का सनीचर कैसे उतरे! जब महीना आता है तब बिना लिखे मन नहीं मानता। यह जानते हैं कि हिंदी के कदरदान इतने भी नहीं हैं कि जिनकी बिनती में एक मिनट की भी देर लगे और लेटर पेपर का आधा पृष्ठ भी भरा जा सके। इसी से जो कोई उत्तम से उत्तम पुस्तक व पत्र प्रकाशित करता है वह अंत में निराश ही होता है अथवा हमारी तरह किसी सज्जन सुशील सहृदय मित्र के माथे देता है। पर क्या कीजिए, लत से लाचारी है, उसी के पीछे जहाँ और हानि तथा कष्ट उठाने पड़ते हैं वहाँ यह चिंता भी चढ़ाई रखनी पड़ती है कि क्या लिखें? किंतु जब इसकी छान बिनान करते हैं तो ऊपर लिखी हुई अड़चनें आ पड़ती हैं। इसी से हमने सिद्धांत कर लिया है कि कुछ सोचैं न किसी से पूछैं, जब जैसी तरंग आ जाय तब तैसा लिख मारैं। उससे कोई रीझै तो वाह-वाह, खीझे तो वाह-वाह। किसी की बने तो बला से बिगड़े तो बला से। हमने न दुनिया भर के सुधार बिगाड़ का ठेका लिया है न विश्वमोहन का मंत्र सिद्ध किया है। हाँ, लिखने का रोग जगा बैठे हैं, उसके लिए सोचा विचारी अथवा पूछताछ क्या कि क्या लिखैं क्या न लिखैं?